शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

कुमाऊँ में संस्कारों की मान्यता – एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० संजय कुमार पन्त
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
इतिहास विभाग, के० जी० के० महाविद्यालय,
मुरादाबाद (उ० प्र०)
ईमेलः *13sanjaypant@gmail.com*

प्राप्तिः 13.08.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

सारांश

कुमाऊँ में प्रचलित संस्कार सम्बन्धी गीतों, जिनके विकास में स्त्रियों का विशेष हाथ है और जिनका भाषागत एवं शैलीगत विश्लेषण इनके स्वरूप को दो सौ वर्ष तक पहुँचा देता है, सामाजिक एकता का ही नहीं सांस्कृतिक एकता का भी प्रतीक कहा जा सकता है। संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले समस्त गीतों में उन संस्कारों के स्वरूप की व्याख्या एवं अर्थ प्रत्यक्ष रूप से देखे जा सकते हैं। भूलोक, अन्तरिक्ष लोक, स्वर्गलोक, पितर, पितृलोक के स्वरूप एवं इनके प्रति यहाँ के जनमानस की आस्थाओं का ज्ञान संस्कार गीतों से प्राप्त होता है। कर्म पुनर्जन्म, आत्मा एवं विभिन्न स्थानीय देवी–देवताओं की पूजा से संस्कारों को जोड़ने के प्रयासों में मान्यताओं के प्रभाव की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है, जो युगों से चली आ रही है और अनवरत रूप से परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप से चलते रहने का संकेत देती हैं, परन्तु संस्कारों के वर्तमान स्वरूप में इतिहास से प्राप्त पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था जैसी मान्यताओं के प्रभाव की स्वीकृति या अस्वीकृति आज के परिप्रेक्ष्य में विचारणीय प्रश्न है।

प्रस्तावना

''संस्कारों नाम स भवति यास्मिन जायते पदार्थों भवति योग्यः कस्याचिदर्थस्य'' के आधार पर कहा जाता है कि संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाता है।[1] वस्तुतः भारतीय मनीषा ने मानव को मानवीयता के उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए उसके वास्तविक स्वरूप को परिष्कष्त एवं परिमार्जित करने के लिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास हेतु जिन विधि निषेधों का उल्लेख किया है, वही संस्कार हैं। भारतीय मनीषा ने इसे स्थिरता प्रदान करने के लिए इन्हें शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं एवं अनुष्ठानों से जोड़ दिया, जिससे वह जनमानस को पूर्ण विकसित स्वरूप प्रदान कर सके। जनमानस की आस्था संस्कारों का आधार स्तम्भ है। बिना आस्था के संस्कारों का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है और न ही इस परम्परा का निर्वाह सम्भव है। युगों से अक्षुण्ण रूप से चली आ रही परम्परा इसी आस्था का परिणाम है।

हमारी आस्था, हमारा विश्वास ही हमारे कर्मों के जनक हैं। हमारी मान्यताओं और उन पर आधारित विचारों का ही स्वरूप हमारे कर्मों में दर्षष्टिगोचर होता है। यदि संस्कार मानव के विकास के वैज्ञानिक साधन हैं तो आस्था उनका पोषण करती है और विश्वास उनको बढ़ाते हैं। वैदिक युग से आज तक सहस्त्रों वर्षो के इतिहास का यदि आलोचनात्मक परीक्षण किया जाय तो यह स्पष्ट हो

जाता है कि धर्मग्रन्थों एवं स्मषतिग्रन्थों में सम्पादित संस्कारों का स्वरूप आज तक नष्ट हो गया होता यदि हमारी आस्था एवं विश्वास का बल इसे न मिला होता। अतः कहा जा सकता है कि हमारी आस्था अपने जीवन के लिए, अपने जीवन की यात्रा के लिए उन संस्कारों पर पूर्ण आश्वस्त है और अवश्य ही इतनी लम्बी यात्रा के बाद भी हमारे संस्कार आज भी अपने स्वरूप एवं अस्तित्व को बनाये हुए हैं। आज भी हिन्दुओं के जन्म से मष्त्यु तक के सभी संस्कार वेद– निहित कर्मकाण्ड के अनुसार सम्पन्न किये जाते हैं। जिन मन्त्रों द्वारा ब्राह्मण आज भी दिन में तीनों समय प्रार्थना करते है, वे वही वैदिक मन्त्र हैं, जो आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व तक प्रचलित थे। परन्तु जनमानस के द्वारा निर्मित स्वरूप में जातीय–स्थानीय मान्यताओं एवं सामाजिक––धार्मिक परिवर्तन के कारण समय–समय पर कुछ न कुछ परिवर्तन होता ही रहता है। हमारी आस्थायें, विश्वास, स्थानीय परम्परायें एवं जातीय इतिहास जनमानस पर समय – समय पर अपना प्रभाव अंकित करते रहते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में संस्कारों की एकरूपता होते हुए भी भिन्न–भिन्न जातियों, भौगोलिक अंचलों तथा समाजों में इनमें कुछ अन्तर पाया ही जाता है। कुमाऊँ में भी यहाँ की आस्थाओं, मान्यताओं और सामाजिक क्रियाकलापों का प्रभाव होने के कारण संस्कारों के स्वरूप में थोड़ा– बहुत अन्तर आया है।

संस्कारों में गर्भाधान का प्रथम स्थान है। अथर्ववेद[2], मनुस्मषति[3] एवं याज्ञवलक्यस्मषति[4] में गर्भाधान सम्बन्धी नियमों की ओर संकेत किया है। शास्त्रानुसार गणपति पूजन गर्भाधान संस्कार के साथ–साथ भ्रूण की सुरक्षा के आशय से किया जाना चाहिए। कुमाऊँ में लगभग 80 वर्ष पूर्व तक बाल विवाह का प्रचलन था। अतः विवाहोपरान्त कन्या के प्रथम बार रजस्वला होने पर सातवें या नवें दिन गर्भाधान से पूर्व भ्रूण की सुरक्षा के आशय से गणेश पूजन किया जाता था।[5] बाल–विवाह की समाप्ति पर भी वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्रों में गणेश पूजन दषष्टिगोचर होता है, यद्यपि अब इसका कोई विशेष महत्व नहीं है। शहरी क्षेत्रों में इसका अस्तित्व लुप्तप्रायः हो गया है। यही स्थिति पुंसवन संस्कार जिसे गर्भरक्षण एवं पुत्रोत्प्राप्ति से जोड़ा गया है, की भी है। वर्तमान में कुमाऊँ का सामान्य जनमानस इस संस्कार को भूल चुका है। गर्भाधान एवं पुंसवन संस्कारों के पश्चात् अमंगलकारी शक्तियों से गर्भ स्थित बालक की सुरक्षा हेतु गर्भाधान के चौथे मास समाप्त होते–होते सीमन्तोन्नयन संस्कार किये जाने का विस्तष्त विवेचन आश्वलायन गष्ह्यसूत्र में मिलता हैं[6], किन्तु कुमाऊँ में वर्तमान में इस संस्कार का भी कोई अस्तित्व परिलक्षित नहीं होता है।

जहाँ तक जातकर्म संस्कार का प्रश्न है कुमाऊँ में इस संस्कार का अस्तित्व दषष्टिगोचर होता है। इसकी प्राचीन विधि से पर्याप्त समानता है। जात कर्म संस्कार के पूर्व स्त्री को प्रसव वेदना होने पर प्रसूति गष्ह का चुनाव कर लिया जाता है तथा कुछ विशिष्ट देवी– देवताओं का स्मरण इस आशय से किया जाता है कि प्रसव–वेदना कम हो और उत्पन्न संतान व माता का जीवन सुरक्षित रहे। अधिकांशतः कुल देवी या देवता के नाम से उचैंण[7] रखा जाता है। सन्तान के उत्पन्न होने पर शंख–ध्वनि से स्वागत होता है और शिशु का नाभिबन्धन होता है। पिता नवजात शिशु को शहद चटाता है और पुनः शिशु को माता के पास दे दिया जाता है। कई स्थानों पर पुत्र के उत्पन्न होने पर यदि उससे बड़ी बहिन हो तो पुत्र प्राप्ति का श्रेय बड़ी बहिन को यह कहकर दिया जाता है कि 'अपणि' दीदिक पीठिक छु तो'[8] । ग्रामीण क्षेत्रों में इस संस्कार की अत्याधिक मान्यता है, परन्तु इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि शहरी क्षेत्रों में जातकर्म की इतनी मान्यता नहीं है।

संस्कारों के क्रम में जातकर्म संस्कार के पश्चात् नामकरण संस्कार का अस्तित्व है किन्तु कुमाऊँ में छठी नामक उत्सव ने जातकर्म संस्कार के पश्चात् संस्कारों की श्रेणी में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। बालक के जन्म के छठे दिन मनाये जाने के कारण यह छठी नाम से अभिहित किया जाता है। पुत्री के जन्म पर यह संस्कार नहीं मनाया जाता हैं।[9] सायंकाल पिता के सूतिका गष्ह में प्रवेश करते समय स्त्रियाँ व कन्यायें पितष्गणों को आमन्त्रित करने हेतु जन–प्रचलित गीत गाती हैं।[10] तदुपरान्त मातृका पूजन, षष्ठी माता और प्रद्युम्न की मूर्तियों के निर्माण कार्य, नान्दी श्राद्ध, मंगलाचरण, कलश स्थापन, नवग्रह पूजन, पाठी में गोबर या मिट्टी से निर्मित स्कन्द प्रद्युम्न एवं षष्ठी देवी के पूजन[11] सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित किया जाता है। धनुष एवं बाण की पूजा के पश्चात् राहुबंधन नामक पोटलिका का बेधन किया जाता है। इस प्रकार छठी नामक संस्कार सम्पन्न माना जाता है।

छठी संस्कार के उपरान्त नामकरण संस्कार का विशेष महत्व है। मनुस्मष्ति में वर्णित है कि शिशु के जन्म के दसवें या बारहवें दिन शुभ नक्षत्र एवं मुहूर्त देखकर नवजात शिशु का नामकरण किया जाना चाहिए।[12] अर्वाचीन क्रम में यह संस्कार भारत के लगभग सम्पूर्ण भागों में समान रूप से सम्पन्न किया जाता है किन्तु विशेष स्थानीय विशेषतायें अलग दृष्टिगोचर होती हैं। कुमाऊँ में नामकरण संस्कार का आधार ब्राह्मणों द्वारा निर्देशित धार्मिक पुस्तकें और जनप्रचलित विश्वास हैं। कुमाऊँ में यह संस्कार नवजात शिशु के पिता द्वारा सम्पन्न किया जाता है किन्तु पिता के अनुपस्थित रहने पर यह अधिकार केवल पिता के भाई को ही दिया गया है।[13] नामकरण कर्ता, गणेश पूजन, पुण्याहवाचन, षोडषोपचार, मातष्का पूजन के पश्चात् शिशु के कान में उसका नाम दोहराता है।[14] तदुपरान्त शिशु की माता शिशु को सूर्य दर्शनार्थ घर से बाहर लाती है जिसे निष्क्रमण कहा गया है। मनुस्मष्ति के अनुसार निष्क्रमण चतुर्थ मास में होना चाहिए परन्तु कुमाऊँ में यह नामकरण के दिन ही पूरा किया जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में सूर्य दर्शनार्थ बाहर जाने का उल्लेख मिलता है।[15]

शिशु की विकास की अवस्था के साथ–साथ जब यह समझा गया कि वह प्रथम बार अन्न को भोजन के रूप में लेकर पचाने योग्य हो गया है तब विधिपूर्वक शिशु को प्रथम बार भोजन कराने की प्रथा को अन्नप्राशन के नाम से अभिहित किया गया। पिता द्वारा मौन पूर्वक हन्त इस शब्द के साथ शिशु को सभी प्रकार के भोजन कराये जाते थे। वर्तमान में कुमाऊँ में इस संस्कार का विशेष महत्व हैं। स्थानीय भाषा में इसे पासिणी के नाम से जाना जाता है।[16] कर्मकाण्डीय विधि विधान से इस संस्कार को सम्पादित करते समय स्त्रियाँ व कन्यायें ज्यूनार, झागुली और भारत सम्बन्धी गीतों को गाती हैं जिनमें विभिन्न पकवानों व सौन्दर्यवर्धक उपादानों का उल्लेख है।[17]

स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य की भावना को लेकर चूड़ाकर्म एवं कर्णबेध संस्कारों का अस्तित्व दषष्टिगोचर होता है। शिशु के प्रथम बार केशादि काटा जाना चूड़ाकर्म एवं कानों में छिद्र किया जाना, कर्णबेध संस्कार के नाम से जाना जाता है। वैदिक ग्रन्थों, सूत्रों एवं परवर्ती काल के ग्रन्थों का अध्ययन स्पष्ट करता है कि इसका समय जन्म से तृतीय वर्ष तक सर्वोत्तम, षष्ठ एवं सप्तम वर्षों में साधारण एवं दसवें व ग्यारहवें वर्षों में निकष्ष्टतम समझा जाता है। वर्तमान में कुमाऊँ में पूर्व की अपेक्षा अब इन संस्कारों के सम्पादन में आयु के निर्धारण की महत्ता समाप्त हो गई है।[18]

उपनयन संस्कार के पहले दिन यजमान के घर में पूर्व या उत्तर की ओर यज्ञशाला निर्मित

करने के उपरान्त चौकी निर्माण, गणेश–पूजन, यजमान द्वारा बालक के द्विजत्व हेतु उपनयन संस्कार के लिए संकल्प एवं यज्ञ होता है। रात्रि में कीर्तन होता है जिसे रात्रि जाग कहा जाता है।[19] दूसरे दिन बालक के केश उतारे जाते हैं और स्नानोपरान्त बालक का कर्णबेध और बिसूली जनेऊ होता है। उसे मूंज की रस्सी एवं दण्ड धारण कर भिक्षार्थ काशी भेज दिया जाता है। लोकाचार में बटुक को द्वार तक भेजकर वापस बुला लिया जाता है और समावर्तन मान लिया जाता है। अतः जनप्रचलित गीतों में काशी जाने का उल्लेख नाम–मात्र रह गया है।[20] पुनः समावर्तन कर्म के पश्चात् वटुक जनेऊ धारण करता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि ब्राह्मण, क्षत्रीय (ठाकुर या खसिया) की जनेऊ में सूत्रों की विभिन्नता होती है। साहजाति के लोग वणिक होते हुए भी छह सूत्र की जनेऊ धारण करते हैं। चतुर्थ दिन स्त्रियाँ बटुक के कटे बाल जलाशय या नदी में बहा आती हैं। उपनयन संस्कार की कर्मकाण्डीय विधि एवं आर्थिक दषष्टि से अत्यधिक खर्चीला देखकर बहुत से शहर में निवास करने वाले व्यक्ति अब अपने विशेष कार्य से इलाहाबाद या हरिद्वार जाते हैं तो इन क्षेत्रों को तीर्थ का स्थान दिया जाने के कारण वहीं पर जनेऊ धारण करवा लेते हैं। पूर्ण वैदिक रीति से इस संस्कार का घरों में आयोजन शिथिल पड़ता जा रहा है। उद्देश्य मात्र करना ही है। यहीं शेष रह गया है। यहाँ तक कि उपनयन संस्कार विवाह के दो चार दिन पूर्व भी किया जाने लगा है।[21]

ऋग्वेद का अध्ययन विवाह का उद्देश्य गष्हस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पत्ति करना बतलाता है। धर्मशास्त्रों के समय तक विवाह के उद्देश्य एवं व्याख्या का विस्तार हो गया था। वास्तव में विवाह का विकास उन परिस्थितियों में हुआ, जिसने उसे एक संस्कार के रूप में पहुँचा दिया। विवाह विधि का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। जहाँ सूर्या के विवाह का वर्णन है, जिससे विवाह व्यवस्था की सादगी पर प्रकाश पड़ता है।[22]

परन्तु वैदिक काल के पश्चात् विवाह विधि में कई मान्यताओं का प्रवेश हो गया और इसका स्वरूप कर्मकाण्डीय एवं जटिल हो गया। इसमें वर पक्ष के घर में मण्डपीकरण, नान्दीश्राद्ध, विभिन्न देवी–देवताओं का पूजन एवं मंगलाचरण होने लगा। कन्या के घर बारात पहुँचने पर श्वसुर द्वारा वर का प्रथम स्वागत एवं कन्यादान होता था। इसके उपरान्त वर–वधू की प्रदक्षिणा करते और प्रतिज्ञायें दोहराते हैं जिसमें सप्तपदी महत्वपूर्ण थी।

कुमाऊँ में अर्वाचीन क्रम में इससे पर्याप्त समानता हैं। कुमाऊँ में इसका आरम्भ वर–वधू के घर में गणेश पूजन व सुआल पथाई से होता है। लग्न की तिथि या उससे पूर्व टीका होता है।[23] विवाह के दिन बारात प्रस्थान से पूर्व वर पक्ष के घर में पूर्वांग, दो मुकुटों एवं वस्त्राभूषणों की प्रतिष्ठा एवं निमछौल की विधि सम्पन्न की जाती है। कन्या के पिता द्वारा लग्नदान संकल्प, गडुवे की धार, सप्तपदी और गनधाक्षत रस्में पूर्ण की जाती है और दूसरे दिन प्रातः ज्यूँति पूजा व द्वार पूजन के पश्चात् बारात विदा कर दी जाती है। ज्यूँति पूजा व द्वार पूजन वर के घर बारात पहुँचने पर भी किया जाता है। सोलह दिनों के पश्चात् या विषम वर्षों में दुर्गुण की प्रथा हैं।[24] यहाँ पर एक तथ्य उल्लेखनीय है कि संस्कषति एवं मान्यताओं के आदान–प्रदान की स्त्रोत स्त्रियाँ विवाहोपरान्त एक स्थान की संस्कषति एवं मान्यताओं को दूसरे स्थान तक ले जाती हैं। इस प्रकार दो स्थानों की संस्कषति एवं मान्यताओं के समन्वय में विवाह की महत्वपूर्ण भूमिका कही जा सकती है।

विवाह के पश्चात् अन्तिम संस्कार के रूप में अन्तेष्ठि संस्कार को मान्यता प्राप्त हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर की कल्पना कर मष्त्यु के उपरान्त उसके मृतक शरीर

के दाह एवं सूक्ष्म शरीर की शान्ति हेतु जो कार्य किया जाता रहा उसने परम्परा का रूप धारण कर लिया तथा शनैः शनैः उसे अन्तिम संस्कार के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई होगी। प्राचीन भारत में शवों की व्यवस्था, शवदाह, एवं अशौच निवारण के लिए प्रयुक्त कष्त्यों का वैदिक ग्रन्थों में विस्तार से उल्लेख मिलता है। परवर्ती काल में थोड़ा बहुत अन्तर आया, किन्तु मूलतत्व वही बने रहे जो वैदिक काल में थे। ऋग्वेद में दाह क्रिया के समय चिता को अग्नि दिये जाते समय प्रार्थना का उल्लेख मिलता है।[25] दाह क्रिया के पश्चात् अस्थि संचय व उसे नदी में प्रवाहित किया जाता था । मष्तक के सम्बन्धी दस दिनों तक निषेधात्मक[26] एवं विध्यात्मक[27] नियमों का पालन करते थे जो कि अशौच की अवधि कहलाती थी। कुमाऊँ में वर्तमान में प्रचलित अन्तेष्ठि संस्कार की उक्त प्राचीन विधि से पर्याप्त समानता है परन्तु समयान्तराल के साथ कुछ परिवर्तन अवश्य आया है। होम के स्थान पर मष्तक के शरीर व मुँह में तुलसी का जल एवं गंगाजल डालने की प्रथा है। गोदान व स्वर्णदान इस आशय से किया जाता है कि मष्तक के शरीर को वैतरणी नदी पार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। मष्तक के जीवित सम्बन्धियों का मुंडन होता है।[28] मष्तक का ज्येष्ठ पुत्र या सम्बन्धी शरीर को अग्नि देता है। तदुपरान्त अस्थि संचय कर अस्थियाँ नदी में प्रवाहित कर दी जाती हैं। मष्तक की क्रिया करने वाला व्यक्ति अवधि पर्यन्त अशौच के नियमों का पालन करता है। अशौच की अवधि में मष्तक की क्रिया करने वाला व्यक्ति एवं सम्बन्धीजन घड़े में छिद्र कर एक डण्डे में घड़े को लटकाकर किसी जलाशय के निकट रख देते हैं और दस दिनों तक वहाँ नित्य प्रति पिण्डदान करते हैं। बारहवें दिन सपिण्डी श्राद्ध कर मष्तक के पितष्राणों में सम्मिलित मान लिया जाता है।[29] इस प्रकार बारहवें दिन अन्तेष्टि संस्कार समाप्त मान लिया जाता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि ऐसे पुरुष मष्तकों का जिनका उपनयन संस्कार न हुआ हो तथा ऐसी स्त्रियों का जिनका विवाह न हुआ उक्त विधि से अन्तेष्ठि संस्कार नहीं होता है, अपितु उन्हें भूमि में दफना दिया जाता है।

इस प्रकार संस्कारों का विवेचन इस तथ्य की पुष्टि करता है कि इतिहास से प्राप्त मान्यताओं ने स्थानीय, सामाजिक परिवर्तनों के कारण इनके स्वरूप को समय–समय पर परिवर्तित किया है। जहाँ गर्भाधान संस्कार से सम्बन्धित विधि का अस्तित्व बाल–विवाह के प्रचलन तक (लगभग 80 वर्ष पूर्व तक) कुमाऊँ में दृष्टिगोचर होता था वहीं अब वर्तमान में बाल–विवाह की समाप्ति पर इसकी विधि का कोई अस्तित्व नहीं दृष्टिगोचर होता है। पुसंवन व सीमन्तोन्नयन संस्कारों का भी कोई अस्तित्व नहीं है। छठी नामक उत्सव का संस्कारों की श्रेणी में नाम न होते हुए भी उसका कुमाऊँ के सन्दर्भ में संस्कारों की श्रेणी में आ जाना इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि जनविश्वास का बल ही संस्कारों का आधार स्तम्भ है जिसे मान्यता ने सम्बल दिया है। कन्याओं की छठी न करना, उनका उपनयन संस्कार न होना, नामकरण संस्कार का अधिकार पिता के कारणवश अनुपस्थित रहने पर स्त्री विशेष को न देना, विवाहोपरान्त स्त्रियों का अपने अस्तित्व को खो देना और पूर्णतः पति पर आश्रित रहना, पुरुष प्रधान समाज की मान्यताओं का ही प्रभाव कहा जा सकता है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के उपनयन संस्कार में जनेऊ धारण में जनेऊ के सूत्रों की विभिन्नता एवं शूद्रों (प्रचलित शब्द डोम) को संस्कारों के क्रियाकलापों में वैधता न देना, ब्राह्मण, क्षत्रिय संघर्ष एवं ब्राह्मणों की सर्वोपरिता की भावना के ही परिणाम का कुमाऊँ में पड़ा प्रभाव प्रतीत होता है। मान्यताओं के सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि पचंक में व्यक्ति की मष्त्यु के आसपास के गाँवों में भविष्य में पाँच लोगों के मृत्यु की आशंका से आशंकित मष्तक के सम्बन्धियों द्वारा इस आशंका के निवारण के लिए शव

के साथ कुश के पाँच पुतलों के चिता में जला दिया जाना, एवं नातक की अवधि में सूतक की स्थिति होने पर नवजात शिशु के नामकरण को सूतक की अवधि के समाप्त होने के बाद ही किया जाना संस्कारों में मान्यताओं के प्रभाव की स्पष्ट अभिव्यंजना करता है।

कुमाऊँ में प्रचलित संस्कार सम्बन्धी गीतों, जिनके विकास में स्त्रियों का विशेष हाथ है और जिनका भाषागत एवं शैलीगत विश्लेषण इनके स्वरूप को दो सौ वर्ष तक पहुँचा देता है, सामाजिक एकता का ही नहीं सांस्कृतिक एकता का भी प्रतीक कहा जा सकता है। संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले समस्त गीतों में उन संस्कारों के स्वरूप की व्याख्या एवं अर्थ प्रत्यक्ष रूप से देखे जा सकते हैं। भूलोक, अन्तरिक्ष लोक, स्वर्गलोक, पितर, पितृलोक के स्वरूप एवं इनके प्रति यहाँ के जनमानस की आस्थाओं का ज्ञान संस्कार गीतों से प्राप्त होता है। कर्म पुनर्जन्म, आत्मा एवं विभिन्न स्थानीय देवी–देवताओं की पूजा से संस्कारों को जोड़ने के प्रयासों में मान्यताओं के प्रभाव की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है, जो युगों से चली आ रही है और अनवरत् रूप से परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप से चलते रहने का संकेत देती हैं, परन्तु संस्कारों के वर्तमान स्वरूप में इतिहास से प्राप्त पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था जैसी मान्यताओं के प्रभाव की स्वीकृति या अस्वीकृति आज के परिप्रेक्ष्य में विचारणीय प्रश्न है।

संदर्भ

1. काणे, पी0वी0, धर्मशास्त्र का इतिहास, पूना, 1930, पष्0 107
2. शर्मा, श्रीराम, अथर्ववेद, 3/23–2, द्वितीय संस्करण (सम्पादित) बरेली, 1962
3. नैने, गोपालशास्त्री, मनुस्मषति (सम्पादित), वाराणसी, 1970, तष्तीय अध्याय
4. मधामूलनक्षत्रे वर्जयेत, शास्त्री, पं0 नारायण दत्त एवं शास्त्री, पं0 जगन्नाथ याज्ञवलक्य स्मृति (सम्पादित), बनारस, 1930, विवाह प्रकरणम्, पृ0 144
5. कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों पर लिए गए साक्षात्कार के आधार पर
6. शर्मा, डॉ0 नरेन्द्र नाथ, आवश्वलायनगृहयसूत्रम्, देहली, 1976, प्रथम अध्याय
7. विशेष स्थानीय देवी–देवता के नाम से इस आशय से कुछ चावल या धन रखना की इच्छापूर्ति के पश्चात् उसका पूजन किया जायेगा ''उचैंण रखना'' कहलाता है।
8. ''अपनी बड़ी बहिन के पीछे का है अर्थात् छोटा है।'' कुमाऊँ में प्रचलित यह उक्ति कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों पर लिए गए साक्षात्कार के आधार पर
9. पूर्वोक्त
10. जना–जना भंवरियां पितरों का देश–पितरों का द्वारस ।का रे होलो पितरों का देस, पितरों का द्वार ए ।आधा सरग चन्द्र सुरीन, आधा सरंग पितरों का द्वारए। सरग होता पुंछना छना –– दसरथ ज्यूं ए । को रैं पूत लै नाना–छीना, पाला ताला दूदै लै नवाया, घिरैतै लै दैवायौ छ न्यूतौ –– खूटा हमारा भीं जी पुजनां डीउ हमरी भीं भीं पुजनी ए। ले लो पितरौं सुनु खुदूकूणीं ।जो रौ पूतौ फलौ नातियों लाख बरीस। हिन्दी अनुवाद – जाओ–जाओ, भँवरे तुम पितष्लोक में हमारे पितृगण के द्वार जाओ। कहाँ होगा पितृलोक ? पितष्गण का द्वार कहाँ होगा ?आधे आकाश में सूर्य

चन्द्र हैं और आधे स्वर्ग में पितृगण का द्वार।स्वर्ग में बैठे राजा दशरथ भंवरे से पूछते हैं ———हमारे किस पुण्य ने, किस पौत्र ने हमें आमन्त्रित किया है ? जिन्हें दूध से स्नान करवाया, भूत से स्निग्ध किया, उन्हीं पुत्रों–पौत्रों ने आपकों आमन्त्रित किया है। (पितृगण का उत्तर) हमारे पॉव तो धरती को स्पर्श नहीं कर पातेहमारी दृष्टि को धरती नहीं सूझती हैं। हे पितृगण ! हम आपके लिए सोने की सीढ़िया बनायेंगे। पुत्रों–पौत्रों प्रपौत्रों तुम शतायु हो लाख वर्ष जिओ। कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण के दौरान लिए गए साक्षात्कार के आधार पर

11. षष्ठी देवी के पूजन के अवसर पर स्त्रियों व कन्यायें जनप्रचलित गीत गाती हैं। आ रे छटटी, हमारा घर, छटटा दिन, छटटा मास छट्टी सुंणी, सांचो मैले रोहिणी पिठयाऊ साली का अच्छत् ।छटटी सुंगी सांचो मैले लाटु सुंवाली, बीड़ा बतासा । छट्टी सुंणी सांचो गाइ का गोबर, दूद–धिरत आ हो छटटी हमारा घर, छटटा दिन छटटा मास । हिन्दी अनुवाद– षष्ठी देवी । आपका स्वागत है (पुत्र जन्म के) छठे दिन, छठे आप हमारे घर पधारिये । षष्ठी देवी के स्वागतार्थ मैने ऐली तथा साल के अक्षत सिंचित किए हैं। षष्ठी देवी के लिए मैंने मोदक, सुंवाल, पान व बतासे मंगाये हैं। षष्ठी देवी के पूजार्थ मैंने गाय का गोबर, दूध तथा घृत मंगवाये हैं। हे षष्ठी देवी ! आपका स्वागत है (पुत्र जन्म के) छठे दिन, छठे माह आप हमारे घर पधारिये । पूर्वोक्त ।
12. नेने, पं0 गोपाल शास्त्री, मनुस्मृति, (सम्पादित), वाराणसी, 1970, द्वितीय अध्याय, पृ0 43
13. कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों पर लिए गए साक्षात्कार के आधार पर
14. नक्षत्र माह एवं जन्मघड़ी के आधार पर शिशु का नाम रखा जाता है।
15. सूरिज किरणा उदय, मैन, बाबें, माई हरिस भैन। खोलि दे पौड़िया पोड़ि के बाड़ा, हमुं ले जाणों छ सूरिज जुहारा।गाड़ि दे सुनरा सुनूं अरघ हमें ले जागो छ सूरिज जुहारा । त्या हो तमोली बीड़ा–बतासा, हमुँ ले जागों छ सूरिज जुहारा । हिन्दी अनुवाद – सूर्य अपनी किरणों सहित उदय हुआ और बालक की माँ हर्षित हो उठी द्वारपाल दरवाजे खोल दो, हमने सूर्य के दर्शन करने जाना है। स्वर्णकार, तुम सोने का अर्ध्य बना दो, हमने सूर्य के दर्शन करने जाना है। पनवारी तुम, पान के बतासे लेकर आओ, हमने सूर्य के दर्शन करने जाना है।

16–21. कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों पर लिए गए साक्षात्कार के आधार पर

22. शर्मा, श्री राम आचार्य, ऋग्वेद (सम्पादित) बरेली, 1962, मण्डल 10 सूक्त 85, ऋचा 36, 42
23. विवाह से पूर्व वर पक्ष के कुछ (अधिकतर पॉच) व्यक्ति वधू को टीका लगाते हैं तब विवाह पक्का समझा जाता है। आधुनिक अर्थो में इसे मंगनी कह सकते हैं। मंगनी व टीके दोनों के स्वरूप में थोड़ा अन्तर हैं परन्तु उद्देश्य व भावना एक ही है।
24. विवाह के पश्चात् वर–वधू का कन्या के घर पहली बार जाना दुर्गुण कहलाता है, किन्तु

जीवन की व्यस्तता एवं आर्थिक दषष्टिकोण से बहुधा बारात कन्या के घर से चलते समय वर–वधू कुछ दूर तक एक रास्ते में चलकर वापस आते हैं और इसे ही दुर्गुण मान लिया जाता है।

25. शर्मा, पं0 श्रीराम, ऋग्वेद (सम्पादित) बरेली, 1962, मण्डल 10, सूक्त 16.10 पृ0 1561
26. शोकाकुल सम्बन्धियों का भोगविलास, जीवन के साधारण कार्य एवं व्यवसाय को त्याग देना निषेधात्मक नियम था।
27. विध्यात्मक नियम के अन्तर्गत मष्तक के शोकाकुल सम्बन्धी तीन–दिन तक भूमि पर शयन करते थे।
28. स्त्रियों, कन्याओं एवं उपनयन संस्कार से रहित लोगों का मुण्डन नहीं होता है।
29. कुमाऊँ के विभिन्न स्थानों पर लिए गए साक्षात्कार के आधार पर।